महाबली की किरकिरी

● अभिनव

पूँजीवादी-साम्राज्यवादी वैश्विक व्यवस्था की सबसे बड़ी ख़ासियतों में से एक यह है कि इसमें सबकुछ इसके कर्ता-धर्ताओं की इच्छानुसार नहीं चलता है। वे अक्सर चाहते कुछ हैं, और होता कुछ और है। जितना वे बचना चाहते हैं, उतना फँसते जाते हैं; जितनी शान बचाना चाहते हैं उतनी शर्मिंदगी झेलते हैं। अब पूर मध्य-पूर्व में अमेरिका की हालत को ही देख लें।

अभी कुछ समय पहले तक ईरान के मसले पर अमेरिका झुकने को बिल्कुल तैयार नहीं था। वह किसी भी कीमत पर ईरान को यूरेनियम संवर्धन और अपना नाभिकीय कार्यक्रम रोकने के लिए बाध्य करना चाहता था। ईरान के ख़िलाफ़ वह लगातार आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने की बात कर रहा था और यह भी कह रहा था कि आख़िरी विकल्प के तौर पर सैन्य हस्तक्षेप की सम्भावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता। लेकिन ताज़ा ख़बरों के मुताबिक अमेरिका और यूरोपीय संघ, जो इस मामले पर अमेरिका के साथ था, ने अपने स्वर ईरान मसले पर नरम किये हैं। ईरान को अपना नाभिकीय कार्यक्रम रोकने की एवज़ में तमाम पैकेज और रियायतें देने की पेशकश की जा रही है। अमेरिका ने तो यहाँ तक कह दिया कि अगर ईरान यूरेनियम संवर्धन बन्द कर दे और जो भी नाभिकीय कार्यक्रम चलाए वह अन्तरराष्ट्रीय नाभिकीय ऊर्जा संघ की निगरानी में चलाए, तो नागरिक उपयोग के लिए नाभिकीय ऊर्जा के विकास में वह स्वयं उसकी सहायता करेगा। यूरोपीय संघ ने पेशकश की है कि अगर ईरान अपना यूरेनियम संवर्धन का कार्यक्रम बन्द कर दे तो वह उसके हवाई जहाज़ों और संरचनात्मक उद्योगों के आधुनिकीकरण में सहायता करेगा।

साफ़ तौर पर ईरान मसले पर अमेरिका और यूरोपीय संघ को अपने सख़्त रवैये से पीछे हटना पड़ा है। ईरान फिर भी नहीं झुक रहा है और कह रहा है कि अगर अमेरिका अनाक्रमण संधि पर हस्ताक्षर कर दे तो कुछ शर्तों को वह मान जाएगा। इस बात के लिए अमेरिका तैयार नहीं है। नतीजतन, अभी दोनों पक्षों के लिए स्वीकार्य किसी सौदे के लिए मशक्कत जारी है।

ईरान मसले पर अमेरिका के पीछे हटने के कई कारण रहे और इससे कई बातें जाहिर होती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात जो एक बार फिर साबित हुई है वह यह है कि जनता को परास्त नहीं किया जा सकता है। इराक़ में अमेरिका के तमाम मंसूबों पर पानी फिर गया। भयंकर दमन और तबाही के बावजूद इराक़ी जनता अपना प्रतिरोध युद्ध जारी रखे हुए है। अमेरिकी हवाई अड्डों पर सैकड़ों की संख्या में उतरते 'बॉडी बैग्स' ने अमेरिका के बुजुर्गों को वियतनाम युद्ध के दिनों की याद दिला दी है। अमेरिका के 6 हज़ार से ज्यादा सैनिक इराक़ युद्ध की शुरुआत के बाद से मारे जा चुके हैं। यह तो सरकारी तथ्य हैं। कई सूत्रों के अनुसार तो यह संख्या इसकी ठीक दूनी है। वहीं अफ़गानिस्तान में भी स्थितियाँ बिल्कुल बदल चुकी हैं। काबुल से बाहर कहीं भी अमेरिकी टट्टू हामिद करज़ई का शासन नहीं है। हर जगह अफ़गानिस्तानी प्रतिरोध योद्धाओं ने अपना प्रभाव फैलाना शुरू कर दिया है। तालिबान एक बार फिर से उठ खड़ा हुआ है और किसी अन्य ताक़त की ग़ैर-मौजूदगी में अमेरिका के ख़िलाफ़ नफ़रत जनता को फिर से तालिबान के पास ले गयी है। अब तो काबुल के भीतर भी आत्मघाती हमले हो रहे हैं और अमेरिका और उसके टट्टू अपने आपको कहीं भी सुरक्षित महसूस नहीं कर पा रहे हैं। अफ़गानिस्तान और इराक़ में अपने हश्र को देखकर अमेरिका के समझ में एक बात आई लगती है। वह यह कि अगर वह इराक़ और अफ़गानिस्तान में जनता को कुचल नहीं सका तो ईरान में तो वह जनता को कुचलने का बस सपना देख सकता है। वह ईरान पर अपनी सैन्य शक्ति के बल पर विजय ज़रूर प्राप्त कर लेता लेकिन उसके बाद वह अपने मन मुआफ़िक कुछ भी नहीं कर पाता। ईरान इराक़ और अफ़गानिस्तान से कहीं ज़्यादा संगठित, बड़ा और वैविध्यपूर्ण देश है। उसकी अर्थव्यवस्था में सिर्फ़ तेल ही नहीं है बल्कि अन्य तमाम मामलों में भी वह आत्मनिर्भर है। पश्चिम से पूरब और पूरब से पश्चिम जाने वाले तेल के सारे रास्ते ईरान से होकर जाते हैं। अनाज के मामले में भी वह आत्मनिर्भर है। इसके अलावा ईरानी जनता अमेरिकी नीतियों को ईरानी क्रान्ति के दौरान एक बार धूल चटा चुकी है। ऐसे भी अमेरिका के पास दो कदम पीछे हटने के अलावा और कोई रास्ता कम से कम फिलहाल तो नहीं था।

अमेरिका को यह बात भी समझ में आ रही है कि अगर वह ईरान पर हमला करता है तो इराक़ में वे शिया भी जो अभी अमेरिका के ख़िलाफ़ कोई कदम नहीं उठा रहे हैं, अमेरिका के ख़िलाफ़ मुखर रूप से सामने आ जाएँगे और सुन्नी और शिया दोनों ही आबादियों के व्यापक रूप से अमेरिका के ख़िलाफ़ हो जाने की सूरत में उसके लिए फूट डालकर गृह युद्ध जैसी स्थिति पैदा करके अपनी स्थिति को सम्भाल पाना मुश्किल हो जाएगा। कुर्द तो यह समझने ही लगे हैं कि अमेरिका कुर्दिस्तान की माँग का सच्चा हमदर्द नहीं है। वे भी अमेरिका का साथ देना छोड़ रहे हैं और विरोध शुरू कर रहे हैं।

अमेरिका के आवाज़ नरम करने से एक बात और सिद्ध हुई है। यह दुनिया कोई एकध्रुवीय विश्व नहीं है। निस्संदेह रूप से विश्व साम्राज्यवाद का चौधरी आज भी अमेरिका ही है। लेकिन ऐसा नहीं है कि कोई अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा नहीं है और सभी देशों ने अमेरिकी ताक़त के आगे घुटने टेक दिये हैं। सभी साम्राज्यवादी देशों के हित दुनिया के तमाम हिस्सों में एक दूसरे से गुंथे हुए हैं। कहीं उनमें अन्तरविरोध नहीं है या कम है तो कहीं वे

एकदम विपरीत हैं। अमेरिका के आगे झुकने का सवाल भी इन देशों के लिए इसी कारक से जुड़ा हुआ है कि उनके हितों पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है। इन्हीं अन्तरविरोधों के चलते अमेरिका को ईरान मसले पर अन्य साम्राज्यवादी देशों से कड़े विरोध का सामना करना पड़ रहा है। एक तरफ़ चीन और रूस ने ईरान के विरुद्ध किसी भी सैन्य कदम का विरोध किया है तो दूसरी ओर अमेरिका के पारम्परिक मित्र भी इस मसले पर अमेरिका का साथ छोड़ने लगे हैं। मसलन, जापान और ऑस्ट्रेलिया तक इस मसले पर अमेरिका का साथ नहीं दे रहे हैं। कनाडा तक ने अमेरिका की मध्य-पूर्व नीति और ईरान पर उसके रुख़ की नरम स्वर में आलोचना की है। यूरोपीय संघ भी किसी भी सूरत में सैन्य हस्तक्षेप से बचना चाहता है। अन्य साम्राज्यवादी देशों की इस नीति के पीछे उनके निहित आर्थिक स्वार्थ काम कर रहे हैं जिन्हें वह अमेरिका के दबाव के सामने झुककर कुर्बान करने को तैयार नहीं हैं।

ईरान में चल रही तमाम विकास परियोजनाओं में तमाम जापानी और चीनी कम्पनियों की भारी पूँजी लगी हुई है। साथ ही जापान के पास अपना कोई तेल भण्डार नहीं है और उसकी अर्थव्यवस्था खाड़ी और अरब के तेल के बिना एक दिन भी नहीं चल सकती। साथ ही चीन और रूस ने जो शंघाई सहकार संघ बनाया है उसके तहत अरब और ईरान में उनकी अपनी महत्वाकांक्षाएँ हैं। इस क्षेत्र में वे अमेरिकी प्रभुत्व में सेंध लगाने की कोशिश कर रहे हैं और बीच-बीच में अमेरिका के ख़िलाफ़ गम्भीर चुनौतियाँ खड़ी कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, अरब देशों में शेखों-शाहों की जो सत्ताएँ हैं वे भी अफ़गानिस्तान, इराक़ और फिलिस्तीन के बाद भयभीत हैं। इन देशों में अमेरिका की कारगुज़ारियों के कारण अरब जनता में अमेरिका के ख़िलाफ़ भारी गुस्सा भरा हुआ है। अगर अमेरिका ईरान पर हमला करता तो इन शासकों के लिए अमेरिका का पक्ष ले पाना मुश्किल हो जाता। उन्हें इस बात का अहसास है कि ऐसा करने पर उनके देश के भीतर से ही उनकी सत्ताओं को ख़तरा पैदा हो जाएगा। इसलिए ये देश भी ईरान मसले पर अमेरिका का समर्थन करने से कतरा रहे थे। वहीं स्वेज़ नहर के पार अमेरिकी नीति का एक पुराना समर्थक मिस्र भी अब अमेरिकी नीति पर सवाल उठा रहा है। कैम्प डेविड में मिस्र के तत्कालीन राष्ट्रपति अनवर सादात का घुटने टेकना अमेरिका की विजय थी। लेकिन अरब विश्व में अमेरिका के ख़िलाफ़ बढ़ती नफ़रत के कारण मिस्र के राष्ट्रपति हुस्नी मुबारक ने साफ़ तौर पर कहा है कि अमेरिका अरब देशों के आंतरिक मसलों में ज़रूरत से ज़्यादा दखल दे रहा है।

यह साफ़ दिखाई दे रहा है कि अमेरिका विश्व भर में ईरान मसले पर अपने पुराने सहयोगियों का समर्थन भी नहीं जीत पा रहा है। लेकिन बात सिर्फ़ दूसरे देशों की नहीं है बल्कि स्वयं अमेरिका के भीतर बुश ईरान के मसले पर समर्थन नहीं जीत पा रहा है। डेमोक्रैटों की बात तो छोड़ दें रिपब्लिकन पार्टी के भीतर उसे भारी विरोध का सामना करना पड़ रहा है। अमेरिका ने इराक़ पर युद्ध थोपा था अपनी कम्पनियों और कारपोरेशनों के मुनाफ़े के लिए। डिक चेनी की कम्पनी और इसी प्रकार कई अन्य अमेरिकी राजनीतिज्ञों की कम्पनियों के दबाव में अमेरिका ने इराक़ पर हमला कर दिया। उसकी उम्मीद थी कि विजय के बाद वह इराक़ को अपनी कम्पनियों की लूट की खुली चरागाह बना देगा साथ इराक़ी तेल पर भी उसका कब्ज़ा हो जायेगा। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। इराक़ी प्रतिरोध योद्धाओं ने मुनाफ़ा कमाना तो दूर इराक़ में अमेरिका का रहना भी मुश्किल बना दिया है। अब बुश के लिए मुनाफ़े का लॉलीपॉप दिखा कर हमले के लिए समर्थन जीत पाना बहुत मुश्किल है। नतीजतन, बुश खेमा अपनी ही पार्टी में अकेला पड़ गया है। आखिरी चुनाव के बाद जनता में भी बुश की लोकप्रियता बुरी तरह गिरी है और अगर अभी चुनाव हो जायें तो बुश की हार होना तय है। कुछ ऐसी ही हालत ब्रिटेन में टोनी ब्लेयर की है। अमेरिका के पीछे-पीछे चलने और ब्रिटेन के राष्ट्रीय हितों से समझौता करने को लेकर ब्लेयर भी अपनी ही पार्टी में अकेला पड़ गया है। उसे भारी विरोध का सामना करना पड़ रहा है।

जनता दुनिया भर में कई अदृश्य सूत्रों से बंधी होती है। प्रतिक्रान्ति के दौर में भी, जब क्रान्ति पर प्रतिक्रान्ति की धारा हावी होती है, जनता के संघर्ष दुनिया भर में परोक्ष रूप से एक-दूसरे की सहायता करते हैं। मिसाल के तौर पर, मध्य-पूर्व में जनता के संघर्षों के कारण अमेरिका अपनी ही नाक के नीचे लातिन अमेरिका में अपने टूटते प्रभुत्व को बचाने के लिए कुछ नहीं कर पा रहा है। अब चुटकी बजाते सैन्य तख़्तापलट कराकर अपनी कठपुतली सरकार बनवाना अमेरिका के बस की बात नहीं रह गई है। दूसरी ओर जनता द्वारा हताशा में किये जाने वाले विरोध को हम आतंकवाद नहीं कह सकते। अगर इराक़ और फिलिस्तीन में आत्मघाती हमले अमेरिकी साम्राज्यवादियों की नींद उड़ा रहे हैं तो उसे आतंकवादी नहीं कहा जा सकता। यह भी ग़ौर करने की बात है कि ऐसा एक भी हमला नागरिकों के ऊपर नहीं किया जाता है। जब तक जनता का कोई क्रान्तिकारी प्रतिरोध संगठित नहीं होता तब तक भी जनता कोई घर नहीं बैठ जाती और उसका पौरुष चुक नहीं जाता है। वह तब भी अपनी लड़ाई को अगणित तरीकों से जारी रखती है।

इस तरह कई स्तरों पर अन्तरविरोध काम कर रहे हैं। इन्हीं बहुस्तरीय अन्तरविरोधों के कारण अमेरिका को अपना स्वर नरम करने को बाध्य होना पड़ा है और ईरान को वह तरह-तरह की रियायतों और सहायता का लालच देकर उसके नाभिकीय कार्यक्रम को रुकवाना चाहता है। यूरोपीय संघ भी अपनी रेवड़ी और गजक लेकर ईरान को ललचाने में लगा है। कोई नागरिक नाभिकीय कार्यक्रम में मदद के लिए कह रहा है तो कोई जहाज़ देने और मरम्मत करने के लिए कह रहा है। कोई संरचनात्मक उद्योगों के आधुनिकीकरण की पेशकश कर रहा है तो कोई तकनोलॉजिकल इनपुट देने के लिए कह रहा है। इन सब बातों से जो तस्वीर उभरकर सामने आ रही है वह इस तथ्य को साफ़ तौर पर बयान कर रही है कि (1) जनता के संघर्षों को हथियारों के बल पर नहीं कुचला जा सकता। बड़े से बड़े हथियारों के जखीरे जनता के महासमुद्र में डूब जाया करते हैं; और, (2) यह विश्व कोई एकध्रुवीय विश्व नहीं है जिसमें अमेरिका की ऐसी दादागीरी चलती है जिसे चुनौती देने की ताक़त किसी में न हो। एकध्रुवीय विश्व सम्भव ही नहीं है। हमेशा विश्व साम्राज्यवाद का कोई न कोई चौधरी तो होता है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं होता कि कोई अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा नहीं होती।